THE TIMES OF INDIA

Date: 23-09-26

Talk More, Please

People now talk a lot less than they did 20 years ago. That might have social and emotional costs

TOI Editorials

Humans have been talking for at least 200,000 years, but looks like we aren't practising enough of late. In 2005, psychologists ran an experiment to test the belief that women out-talk men. They found it was bunk. In fact, the most loquacious participants in the study turned out to be some men, averaging 47,000 words a day – roughly half the length of a typical modern novel. But the overall average was around 16,000 words, with no significant difference between the sexes. By 2019, it had fallen to roughly 12,000 words.

Nobody knows for sure why we became less talkative, but the top hunch is that we became too engrossed in our digital lives. Navigation apps made stopping and asking directions unnecessary. E-comm silenced shopping. We enter elevators nose in phone, and ride the subway without acknowledging other riders. "Can't talk, please text" is our permanent status. Small talk, incidental conversations with strangers, and outer-circle interactions with acquaintances and neighbours are unnecessary and avoidable. We have optimised our leisure time, taking morning walks plugged into music or podcasts.

This "efficiency" has cost us many millions of words each over the years. And it matters because we are social animals. Yes, small talk seems wasteful, but research shows we actually come away happier from it. Speaking those few words to a neighbour, colleague, or rank stranger, makes us feel more connected. You may discuss the weather, but the real communication occurs through tone, gestures, body language, facial expressions. You can't harbour hatred for someone after lamenting onion prices with them. So, small talk makes the world a less hostile place. We look at each other and think, "I know you. We've spoken before. You're not out to harm me. We can get along."

The 4,000 daily words we don't speak now were part of our social budget. We still talk to family, close friends and work teams more or less as we did before, but on everyone else we're shutting the door. For what? To watch more reels, or soak in rage on X? It's not a good bargain. Maybe, if we dug ourselves out of our phones, and said more hellos, we'd feel more emotionally and socially secure.

दैनिक भास्कर

Date: 23-09-26

वोटर सूची में सुधार जरूरी, बशर्ते मतदाता के अधिकार सुरक्षित हों

प्रियदर्शन, (लेखक और पत्रकार)

मतदाता सूची के शुद्धीकरण का सात्विक इरादा लेकर चुनाव आयोग द्वारा देश भर में चलाए जा रहे एसआईआर अभियान के नतीजे अलबत्ता कुछ और ही संकेत कर रहे हैं। दिल्ली में अरविंद केजरीवाल और उनके परिजनों तक को नोटिस चला गया है कि वे साबित करें कि पहले भी वे दिल्ली के वोटर रहे हैं। खुद एक चुनाव आयुक्त सहित कई जाने-पहचाने नेताओं को ऐसा ही नोटिस गया है। इसके पहले बेंगलुरु में भी नंदन नीलेकणी को ऐसा ही नोटिस दिया गया था।

वैसे केजरीवाल, नीलेकणी या दूसरे लोगों को फिक्र करने की जरूरत नहीं है। ये वे कद्दावर हैं, जिनके नामों या ब्योरों में मिलने वाली असंगतियां चुनाव आयोग उनके घर जाकर दूर कर देगा। लेकिन 2002 की मतदाता सूचियों से हर्फ-दर-हर्फ मिलान और पुष्टि का चुनाव आयोग का उत्साह उन करोड़ों मतदाताओं पर भारी पड़ रहा है, जिन्हें याद नहीं है कि उस समय वे या उनके मां-पिता कहां थे, उन्होंने कहां वोट दिए थे, उस समय उनके विधानसभा क्षेत्रों के नाम क्या थे, या उन दिनों मतदाता सूची में उनके नाम किस तरह दर्ज थे।

ये सवाल उन गरीब, कमजोर लोगों को ज्यादा संकट में डालने वाले हैं, जो नौकरी या रोजगार की मजबूरी में शहर-शहर, बस्ती-बस्ती भटकते और काम करते रहे हैं, उन महिलाओं के लिए मुसीबत बन रहे हैं जिनके नाम शादी के बाद बदल गए या जिनको खयाल नहीं आ रहा कि तब उनके नामों की वर्तनी क्या थी।

इसके नतीजे हम बंगाल में देख चुके हैं, जहां 91 लाख वोटरों के नाम कटे। इनमें करीब 22 लाख ऐसे थे, जिन्होंने चुनाव आयोग के फैसले को चुनौती दी, अपने कागज जुटाए और इंतजार करते रहे कि उन्हें वोट देने का अधिकार मिलेगा। लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने चुनाव आयोग की यह बात मान ली कि इन सबकी जांच के बाद ही इन्हें वोट देने का अधिकार दिया जा सकता है। चुनाव खत्म हो गए, अभी तक दावों की जांच जारी है और लाखों लोगों का

वोट देने का अधिकार स्थगित या लम्बित है। इधर खबर आई है कि बंगाल एसआईआर ट्रिब्यूनल को प्राप्त हुई लाखों अपीलों के निराकरण में 12 वर्ष तक का समय लग सकता है और इस अवधि में प्रभावित मतदाता एक दशक से अधिक समय तक अपने मताधिकार का उपयोग नहीं कर सकेंगे!

चुनाव आयोग तो कहता है कि सबकी सुनवाई होगी, लेकिन जिसके पास कागज नहीं है, उसका क्या होगा? मुख्यमंत्री शुभेंदु अधिकारी ने हाल में यह भी कहा कि जिनके नाम मतदाता सूची में नहीं हैं, उन्हें सरकारी योजनाओं का भी लाभ नहीं मिलेगा। यह एक तरह से लोगों से उनके नागरिक अधिकार छीनना है।

निश्चय ही, लोकतंत्र के स्वास्थ्य के लिए मतदाता-सूचियों में निरंतर सुधार और संशोधन एक अपरिहार्य प्रक्रिया है। लेकिन जिस तरह बीते कुछ अरसे में इस प्रक्रिया को अंजाम दिया जा रहा है, उसको लेकर कई गंभीर सवाल खड़े हुए हैं। लोकतंत्र के लिए जितना जरूरी यह है कि उसमें एक भी फर्जी या अवैध वोट न डाला जाए, उतना ही यह भी जरूरी है कि किसी भी पात्र नागरिक को उसके वोट देने के हक से वंचित न किया जाए। बांग्लादेशी या अन्य विदेशी घुसपैठियों को मतदान की प्रक्रिया से बाहर रखने की कवायद में कितने ऐसे घुसपैठिए मिले हैं, इसकी कोई संख्या अभी तक चुनाव आयोग ने नहीं दी है। यह अनायास नहीं है कि विपक्ष इस अभियान को संदेह की नजर से देख रहा है और अदालतों में इसे चुनौती दी जाती रही है।

लेकिन अंततः यह देश के लोकतंत्र का, उसके नागरिकों के बुनियादी लोकतांत्रिक अधिकारों का भी सवाल है। इसमें किसी प्रकार की कोई चूक, कोई हड़बड़ी न हो, और हर किसी का नाम सहज ढंग से शामिल हो सके- यह देखना राज्य का दायित्व है, जो उसे चुनाव आयोग के मार्फत पूरा करना है।

दैनिक जागरण

Date: 23-09-26

सवालों में आईआईटी बॉम्बे

संपादकीय

प्रतिष्ठित तकनीकी शिक्षा संस्थान आईआईटी बॉम्बे में एक छात्र की आत्महत्या को लेकर जिस तरह दलगत राजनीति भी होनी शुरू हो गई है, वह दुर्भाग्यपूर्ण ही है। राजनीतिक दलों को कम से कम ऐसे किसी मामले पर राजनीतिक रोटियां सेंकने से बाज आना चाहिए, जिससे समाज में वैमनस्य पैदा होने का खतरा हो। यह इसलिए और भी आवश्यक है, क्योंकि अभी यह स्पष्ट नहीं कि छात्र साहिल रवींद्र वाकोडे ने आत्महत्या क्यों की। आईआईटी बॉम्बे प्रबंधन के अनुसार उसे मोबाइल फोन के जरिये नकल करते पकड़ा गया था, लेकिन उसके खिलाफ कोई

कार्रवाई नहीं की गई थी। बाद में उसने हास्टल के कमरे में आत्महत्या कर ली। यह खबर आते ही साहिल के पिता ने यह आरोप लगाया कि उसे तीन माह से प्रताड़ित किया जा रहा था और जातिसूचक गालियां दी जा रही थीं, लेकिन यह अनुत्तरित ही है कि इसका उल्लेख पहले क्यों नहीं किया गया और संस्थान के एससी-एसटी सेल में इसकी शिकायत क्यों नहीं की गई? यह ठीक नहीं कि इन प्रश्नों का उत्तर सामने आने और जांच पूरी होने के पहले ही साहिल को नकल करते हुए पकड़ने वाले शिक्षक सूर्यनारायण दुल्ला पर एससी-एसटी एक्ट के तहत मुकदमा दर्ज करा दिया गया। आखिर जब आईआईटी बॉम्बे प्रबंधन तंत्र के साथ मुंबई क्राइम ब्रांच घटना की जांच कर रही है और इस जांच के चलते प्रोफेसर दुल्ला को डीन पद से हटा दिया गया है, तब फिर इस निष्कर्ष पर पहुंचने का क्या औचित्य कि साहिल को प्रताड़ित करने के साथ आत्महत्या के लिए विवश किया गया?

उचित यही है कि आत्महत्या करने वाले छात्र के स्वजन, आईआईटी बॉम्बे के छात्र और राजनीतिक दल साहिल की मौत की जांच की प्रतीक्षा करें। इसी के साथ यह भी आवश्यक है कि आईआईटी जैसे संस्थान उन कारणों की पहचान कर उनका निवारण करें, जिनके चलते छात्र रह-रहकर आत्महत्या करते रहते हैं। यह सामान्य बात नहीं कि बीते कुछ माह में आईआईटी बॉम्बे के ही चार छात्र आत्महत्या कर चुके हैं। ऐसे ही मामले अन्य आईआईटी में भी देखने को मिले हैं। चूंकि आत्महत्या करने वाले छात्र सभी वर्गों के रहे हैं, इसलिए इस नतीजे पर पहुंचना सही नहीं कि इन संस्थानों में वर्ग विशेष के छात्रों के प्रति भेदभाव होता है, लेकिन इतना तो है ही कि छात्रों को तनावमुक्त वातावरण प्रदान करने की आवश्यकता है। आईआईटी देश के सबसे प्रतिष्ठित संस्थान हैं। इन संस्थानों में पठन-पाठन का स्तर और साथ ही माहौल ऐसा होना चाहिए, जिससे किसी भी छात्र को आत्महत्या न करना पड़े। इसके लिए शिक्षक-छात्र अनुपात बेहतर करने के साथ ही पढ़ाई में कमजोर और किसी कारण मानसिक रूप से परेशान छात्रों की काउंसिंलिग के तंत्र को सुधारा भी जाना चाहिए, क्योंकि इसमें कमी दिख रही है।

जनसत्ता

Date: 23-09-26

विद्यार्थियों की फिक्र

संपादकीय

शिक्षा का उद्देश्य केवल किताबी ज्ञान देना नहीं, बल्कि इसमें विद्यार्थी का सामाजिक, भावनात्मक, नैतिक और शारीरिक विकास भी शामिल है। मगर सवाल है कि देश की मौजूदा शिक्षा व्यवस्था में क्या इन मानदंडों को अपनाकर विद्यार्थी के चहुंमुखी विकास पर ध्यान दिया जाता है ? क्या सांस्थानिक स्तर पर संवेदनशील और समावेशी दृष्टिकोण के साथ हाशिये के तबकों के विद्यार्थियों की समस्याओं पर गौर किया जाता है? यह बेवजह

नहीं है कि स्कूलों से लेकर उच्च संस्थानों तक में पढ़ाई, परीक्षा, करिअर और भविष्य को लेकर बढ़ता दबाव और कुछ स्तर पर उपेक्षा कई विद्यार्थियों को मानसिक तनाव की ओर धकेल रहा है। इस कारण विद्यार्थियों की आत्महत्या की घटनाएं भी बढ़ती जा रही हैं। इसी के मद्देनजर केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय ने हाल में उच्च शिक्षण संस्थानों को विद्यार्थियों की मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं पर ध्यान केंद्रित करने और आत्महत्याओं की घटनाओं की रोकथाम के लिए तत्काल कदम उठाने के निर्देश दिए हैं। साथ ही विद्यार्थियों की आत्महत्या या अप्राकृतिक मौत की सूचना तत्काल पुलिस को देने और इसकी सालाना रिपोर्ट तैयार करने को भी कहा है।

इस मामले में उच्चतम न्यायालय की ओर से गठित राष्ट्रीय कार्यबल ने भी अपनी अंतरिम रिपोर्ट में कहा था कि उच्च शिक्षण संस्थानों में आत्महत्या की बढ़ती समस्या के पीछे शैक्षणिक दबाव, जाति आधारित भेदभाव, आर्थिक तनाव, यौन उत्पीड़न और परीक्षा में विफलता जैसे कारण शामिल हैं। सवाल है कि क्या शिक्षण संस्थान महज अंकों की प्रतिस्पर्धा के केंद्र बनकर रह गए हैं। क्या विद्यार्थियों की परेशानियों के समाधान को लेकर संस्थानों की संवेदनशीलता और जिम्मेदारी को हाशिये पर रखा जा रहा है? यही नहीं, आवासी उच्च शिक्षण संस्थानों में विद्यार्थियों के लिए चौबीसों घंटे चिकित्सा सहायता उपलब्ध कराने के शीर्ष अदालत के निर्देशों पर भी पूरी तरह अमल नहीं हो पा रहा है। यही वजह है कि शिक्षा मंत्रालय को परिपत्र के जरिए शिक्षा संस्थानों को इन निर्देशों की याद दिलानी पड़ी है।

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो की एक रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2023 में देश भर में तेरह हजार से अधिक विद्यार्थियों ने विभिन्न कारणों से आत्महत्या की इस तरह के मामलों में वर्ष 2014 से 2023 के बीच सत्तर फीसद से अधिक की वृद्धि हुई है। आइआइटी जैसे प्रतिष्ठित संस्थानों में भी यह समस्या गहराती जा रही है। हाल ही में आइआइटी मुंबई में एक छात्र की आत्महत्या की घटना ने एक बार फिर इस मसले पर व्यापक चिंता और सुधार के तकाजों की जरूरत को रेखांकित किया है। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक, वर्ष 2018 से 2023 के बीच देश के विभिन्न आइआइटी में 39 छात्रों ने आत्महत्या की शीर्ष न्यायालय की ओर से गठित राष्ट्रीय कार्यबल ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि आइआइटी में ज्यादातर शिक्षक मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से निपटने के लिए खुद को पर्याप्त रूप से सक्षम नहीं मानते, क्योंकि उन्हें उचित प्रशिक्षण नहीं मिला है। जाहिर है कि समस्या केवल संस्थानों की लापरवाही या जिम्मेदारी से मुंह मोड़ने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सरकारी स्तर पर नीतिगत निर्णयों की अनुपस्थिति भी इसका एक प्रमुख कारण है। इसके अलावा, शिक्षकों को भी विद्यार्थियों की समस्याओं के प्रति संवेदनशील बनाना होगा। शिक्षक का काम केवल पाठ्यक्रम पूरा करना नहीं, बल्कि विद्यार्थियों के लिए सुरक्षित एवं सहयोगी वातावरण तैयार करना भी है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 23-09-26

छात्र खुदकुशी पर हो गंभीर संवाद

हरिवंश चतुर्वेदी, (महानिदेशक, आईआईएलएम)

आईआईटी, मुंबई के बीटेक, द्वितीय वर्ष के छात्र साहिल वोकाडे की आत्महत्या ने एक बार फिर देश के उच्च शिक्षा जगत में गंभीर बहस छेड़ दी है। इससे पहले आईआईटी, दिल्ली और कानपुर में भी दो छात्रों ने खुदकुशी कर ली थी, जिससे यह सवाल उठने लगे हैं कि आखिर क्यों आईआईटी व केंद्रीय विश्वविद्यालयों जैसे उच्च स्तरीय शिक्षण संस्थानों में, जहां हर प्रकार की सुविधाएं केंद्र सरकार द्वारा मुहैया की जाती हैं, छात्र खुदकुशी करने जैसे दुखद कदम उठाते हैं?

देश के विश्वविद्यालय और कॉलेज कैंपस में छात्रों द्वारा आत्महत्या की प्रवृत्ति लगातार बढ़ रही है। पिछले तीन वर्षों में उच्च शिक्षण संस्थानों में सालाना करीब 14 हजार आत्महत्याएं हुईं, जबकि वर्ष 2014-15 में यह संख्या आठ हजार से कम थी। जाहिर है, हमारी युवा पीढ़ी के मानसिक हालात ठीक नहीं हैं। अगर हमें देश को अगले 20 वर्षों में एक खुशहाल और विकसित राष्ट्र बनाना है, तो इस समस्या को जड़ से खत्म करना होगा। नौजवान पीढ़ी को जब हम देश के भविष्य का निर्माता समझते हैं, तो उन्हें मानसिक रूप से बुरे हालात में छोड़ नहीं सकते।

आईआईटी, मुंबई एक प्रतिष्ठित प्रौद्योगिकी संस्थान है, पर साहिल वोकाडे की आत्महत्या कोई पहली घटना नहीं है। पिछले दो दशक में यहां छात्रों की अस्वाभाविक मृत्यु के 171 मामले सामने आए हैं, जिनमें से 120 तो पिछले दस वर्षों में ही हुए हैं। ये आंकड़े ग्लोबल आईआईटी एलुमनाई और मीडिया रिपोर्टों से मिले हैं। दुख की बात है कि युवाओं की खुदकुशी से कुछ दिनों तक तो मीडिया में सनसनी बनी रहती है, फिर हम भूल जाते हैं। ये इक्का-दुक्का या व्यक्तिगत बीमारी के फलस्वरूप होने वाली घटनाएं नहीं हैं, बल्कि इनके गहरे कारण हमारे सामाजिक ढांचे, अर्थव्यवस्था और संकटग्रस्त उच्च शिक्षा में छिपे हुए हैं।

देश के जाने-माने हैदराबाद विश्वविद्यालय में छात्र-आत्महत्या की एक दर्दनाक घटना 17 जनवरी, 2016 को घटी थी, जब शोध छात्र रोहित वेमुला ने हॉस्टल के कमरे में खुदकुशी कर ली थी। इस घटना पर भयंकर राजनीतिक बहस छिड़ी और फिर उन कारणों को भुला दिया गया, जिसने रोहित को ऐसा कदम उठाने को मजबूर किया था।

उसने मरने से पहले एक नोट छोड़ा था, जिसमें लिखा था, एक इंसान की कीमत उसकी सामाजिक पहचान से लगाई जाती है और इसी कारण उसे यह कदम उठाने के लिए मजबूर होना पड़ा।

परिसरों में आत्महत्या की बढ़ती प्रवृत्ति पर होने वाली बहसों में अक्सर यह कह दिया जाता है कि छात्रों में विपरीत परिस्थितियों को सहने की ताकत होनी चाहिए, और अगर वे कठिनाइयों से घबराकर मौत चुनते हैं, तो यह सिर्फ उन्हीं का दोष है। यह नजरिया हमारे राष्ट्रीय चिंतन और चेतना में मानसिक बीमारियों के प्रति उपेक्षा और हल्केपन को दर्शाता है। आमतौर पर लोग यह सोचते हैं कि आत्महत्या का कारण व्यक्ति की अपनी मानसिक दुर्बलता है और इसके कोई सामाजिक या आर्थिक कारण नहीं हैं, लेकिन क्या हम यह मान लें कि हमारे संस्थानों में जातिगत और लैंगिक आधार पर भेदभाव नहीं होते? क्या हम यह भी नहीं मानेंगे कि परिसरों में विद्यार्थियों का एक बड़ा वर्ग आर्थिक तंगी का शिकार होता है और समय पर छात्रवृत्ति न मिलने के कारण भी वह आत्महत्या को चुनता है।

रोहित वेमुला की आत्महत्या पर देश भर में तीखी प्रतिक्रिया के बाद यूजीसी और एआईसीटीई द्वारा शिक्षण परिसरों में मानसिक रोगों की रोकथाम के लिए निर्देश जारी किए गए थे, जिनमें हर कैंपस में मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ाने के उपाय सुझाए गए थे। हर कॉलेज और यूनिवर्सिटी कैंपस में प्रशिक्षित काउंसलर नियुक्त किए जाने का भी निर्देश दिया गया था, लेकिन क्या ये उपाय समुचित हैं? क्या कुछ गिने-चुने काउंसलर हजारों छात्रों की मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का निराकरण कर सकते हैं? छात्रों की मानसिक परेशानियों को समय रहते पहचानने का काम उनके अपने साथी, शिक्षक और स्टाफ कर सकते हैं, परंतु उसके लिए उन सभी का प्रशिक्षित होना जरूरी होता है। क्या हमारे देश के तमाम विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों में ऐसा प्रशिक्षण अभी तक हो पाया है?

छात्रों में आत्महत्या की बढ़ती प्रवृत्ति को देखते हुए सुप्रीम कोर्ट ने 'अमृत कौर बनाम भारत संघ' मामले में मार्च 2025 में न्यायमूर्ति एस रवींद्र भट्ट की अध्यक्षता में एक नेशनल टास्क फोर्स गठित की थी, जिसे आत्महत्या के कारणों, मौजूदा कानूनों की समीक्षा और वर्तमान संस्थागत व्यवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए आत्महत्या रोकने के ठोस उपाय बताने को कहा गया। इस टास्क फोर्स ने मानसिक स्वास्थ्य एवं शिक्षण परिसरों में आत्महत्या की प्रवृत्ति पर राष्ट्रीय स्तर पर एक सर्वेक्षण किया, जो पहले किसी ने नहीं किया था।

18 मई, 2026 को सुप्रीम कोर्ट को सौंपी गई अपनी अंतरिम रिपोर्ट में टास्क फोर्स ने बताया कि 16,732 उच्च शिक्षण संस्थानों के 12.88 लाख विद्यार्थियों, 1.6 लाख शिक्षकों और 2.26 लाख अभिभावकों के बीच सर्वेक्षण किया गया, जिससे पता चला कि आत्महत्या का कारण व्यक्तिगत मानसिक कमजोरी न होकर युवाओं पर बढ़ता आर्थिक, सामाजिक और संस्थागत दबाव है। 70 प्रतिशत संस्थाओं में पूर्णकालिक पेशेवर मानसिक रोग चिकित्सक नहीं हैं और सिर्फ चार प्रतिशत संस्थाओं में खुदकुशी को रोकने वाली कोई प्रबंध प्रणाली बनाई गई है।

टास्क फोर्स ने रिपोर्ट में यह भी कहा कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और ओबीसी छात्रों में इन समस्याओं को झेल पाने की कम क्षमता होती है और वे हारकर पढ़ना-लिखना ही छोड़ देते हैं। टास्क फोर्स ने परिसरों में शिक्षकों और प्रशासनिक अधिकारियों के सभी रिक्त पदों को भरे जाने की सिफारिश भी की। माना यह भी गया कि आत्महत्या के मामलों की तुरंत सूचना संबंधित अधिकारियों को दी जानी चाहिए और हर विश्वविद्यालय व महाविद्यालय में चौबीस बाई सात मानसिक स्वास्थ्य संबंधी इलाज उपलब्ध होना चाहिए।

न्यायमूर्ति भट्ट के नेतृत्व वाली यह टास्क फोर्स कैंपस में मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं पर अपनी अंतिम रिपोर्ट 31 अक्तूबर, 2026 तक पेश करेगी। देश को हर हालत में एक राष्ट्रीय संकल्प लेकर अपने छात्रों में आत्महत्या की बढ़ती प्रवृत्ति को समूल नष्ट करना होगा, क्योंकि इस मानवीय त्रासदी को रोके बिना एक खुशहाल समाज और एक विकसित राष्ट्र बनाने का हमारा सपना अधूरा ही रहेगा।